नियमसार ११३ कलश है। सार... सार... है। सत्।

आत्मा निज परमानन्दरूपी... आत्मा का स्वभाव त्रिकाल निज परमानन्द (स्वरूप है)। जैसे गुड़ का स्वभाव मीठा, शक्कर का स्वभाव मीठा है, वैसे भगवान आत्मा अपने निज परमानन्दरूपी **अद्वितीय अमृत से...** आहाहा! अद्वितीय अजोड़ अमृत से **गाढ़ भरे हुए...** आहाहा! वस्तु है न? वस्तु है, वह अपने अतीन्द्रिय आनन्द से गाढ़ भरे हुए... आहाहा! यहाँ तो अकेला तत्त्व है। ऐसा अद्वितीय, अजोड़ एक यह **गाढ़ भरे हुए, स्फुरित...** प्रगट है। अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर प्रगट है। शक्तिरूप, स्वभावरूप प्रगट है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा है, उसे **सहज-ज्ञानस्वरूप आत्मा को...** ऐसे सहजज्ञान... आनन्द और ज्ञान दो इकट्ठे लिए हैं। स्वाभाविक जो त्रिकाल ज्ञान है, आत्मा का त्रिकाली सहज ज्ञानस्वभाव, जैसा सहज आनन्द से गाढ़ से भरा हुआ, ऐसे सहजज्ञान से भरा हुआ, प्रगट ऐसे आत्मा को... आहाहा!

निर्भर... भर से भी निर्भर। **(-भरपूर)...** भरा हुआ। ज्ञान और आनन्द से गाढ़ निर्भर भरचक भरा हुआ भगवान है। आहाहा! यह उसका ध्रुवस्वरूप है। वह स्वत:

अनादि अपना सत् का वह सत्व है। सत् का वह सत्व है। आहाहा! ऐसे **निर्भर (-भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भजन। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के **शममय जल द्वारा स्नान कराओ;...** आहाहा! **स्नान कराओ;...** है न? निज अतीन्द्रिय आनन्द शममय जल। भरचक भरा हुआ भगवान, उसमें एकाग्र होकर स्नान कराओ। मलिनता का नाश करो। आहाहा! यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय भी मल है। आहाहा! उसे **निज शममय जल द्वारा...** समता, ज्ञान, आनन्द ऐसे तीन लिए हैं। वीतरागता, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा को **शममय जल द्वारा स्नान कराओ;...** अर्थात् उसके सन्मुख होकर, वीतरागभाव द्वारा अशुद्धता का नाश करने के लिए स्नान कराओ। यह स्नान है। सवेरे उठकर स्नान करते हैं। मैल चढ़ता है, मैल। ऐसे होता है। शत्रुंजय नदी में नहावे तो मैल टले, गंगा में जाए तो यह हो। आहाहा! यह तो वह गंगा है। ओहो! संक्षिप्त भाषा। एकदम रहस्य भरा है।

निमित्त और व्यवहार की तो यहाँ बात ही नहीं। वह वस्तु में है ही नहीं। वस्तु में तो अतीन्द्रिय आनन्द, शमजल वीतरागता और सम्यक् आनन्द, ज्ञान। आहाहा! ज्ञान, आनन्द और वीतरागभाव द्वारा स्नान कराओ। संसार की दशा का नाश करो। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है। यह करूँ.. यह करूँ.. क्रिया करना। यह (आत्मा) तो अक्रियस्वरूप है। वास्तव में परिणति निर्मल है, वह भी उस वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा जो अक्रिय आनन्द से भरपूर भगवान अक्रिय ज्ञान से भरपूर सहज स्वभाव को वीतरागभाव द्वारा एकाग्रता करो, उसे स्नान कराओ। आहाहा! उससे संसार का मैल मिटेगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! निमित्त को तो दूर किया। उसमें तो नहीं है, परन्तु उसकी पर्याय में जो विकार है, उसे भी द्रव्यस्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान और वीतरागभाव से उसे स्नान कराओ। आहाहा!

ऐसी बात कठिन लगती है। फिर व्यवहार ऐसा है... व्यवहार ऐसा है... आहाहा! व्यवहार साधक है। जयसेनाचार्य में बहुत आता है। यह ज्ञान कराया है। इससे उस विद्यासागर ने लिखा है कि जयसेनाचार्य हैं, वे परम्परा के आचार्य हैं और अमृतचन्द्राचार्य तो काष्ठासंघी हैं, परम्परा के नहीं हैं। अरे! प्रभु! अर र .र! ऐसी सूझ कहाँ से पड़ी प्रभु तुझे? आहाहा! अमृत का सागर भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने अमृत का प्रवाह बहाया है।

आहाहा! उन्हें काष्ठासंघी कहना, प्रभु प्रभु! सुनने जैसा (नहीं है)। उसने ऐसा लिखा है। जयसेनाचार्य परम्परा के आचार्य हैं और ये नये काष्ठासंघी नये (हैं), परम्परा के नहीं हैं। आहाहा! प्रभु! प्रभु! ओहो! सुनकर रुदन आ जाए ऐसा है। आहा! अरे! ऐसी बात? प्रभु! अमृत से भरा हुआ भगवान, उसे अमृतचन्द्राचार्य ने... यह पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। आहाहा! दोनों ने टीका करके अमृत का प्रवाह बहाया है। आहाहा! अनादि सनातन तीर्थंकर, केवली, मुनि और समकिती जो... आहाहा!

अब यहाँ तक ऐसा कहते हैं, महाव्रत धारे बिना अनुभूति आनन्द और सम्यक्त्व नहीं होता। अर र! अरे रे! ऐसा? प्रभु! तू यह क्या करता है? सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकिती... आहाहा! श्रेणिक राजा। हजारों राजा सेवा करते थे। (वे) क्षायिक समकिती। भरत चक्रवर्ती, कि जिन्हें छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक। कोई नहीं, मैं हूँ वह पूर्ण हूँ। आहाहा! मुझमें पूर्णानन्द में पर्याय की अवस्था की गन्ध नहीं। राग की तो गन्ध कहाँ से होगी? प्रभु! आहाहा! ऐसा कहा न?

अद्वितीय अमृत से गाढ़ भरे हुए,... और **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! विकल्प के दुःख भक्तिपूर्वक से वह नहीं समझ में आता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकल्प जो है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो, उस दुःख से नहीं ज्ञात होता। **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय की भक्ति। उस अतीन्द्रिय आनन्द में एकाग्रता, वह भक्ति है। आहाहा! भगवान की भक्ति तो राग है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत से भरा हुआ, उसे आनन्द भक्तिपूर्वक। आनन्द भक्तिपूर्वक, अतीन्द्रिय आनन्द की परिणतिपूर्वक। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

अतीन्द्रिय अमृत के ज्ञान से तो गाढ़ भरा हुआ। ध्रुव, वज्र, वज्र से भरपूर। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा को राग की भक्ति और पर की भक्ति से नहीं परन्तु आनन्द की भक्ति से.. आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय से उसे स्नान कराओ। यशपालजी! दूसरों को ऐसी बात कठिन लगती है। क्या हो? आहाहा! प्रभु! इसकी महिमा की इसे खबर नहीं है। यह (आत्मा) पामर नहीं है। यह पर्याय की निर्मलता का अंश है, इतना-इतना वह नहीं है। आहाहा! वह ध्रुव अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान से गाढ़ भरपूर है। उसे आनन्द भक्ति

से स्नान कराओ। आहाहा! भक्ति शब्द क्यों लिया? भगवान की भक्ति है, उससे कुछ निर्मल स्नान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह राग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग है; इसलिए (यह) शब्द प्रयोग किया है-आनन्दभक्ति। भगवान की भक्ति, वह रागभक्ति है, प्रभु! आहाहा! ऐसी बातें। भगवान अतीन्द्रिय अमृत के स्वभाव से (भरपूर) तत्त्व है, वस्तु है तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और वीतरागता के स्वभाव से गाढ़ पूर्ण भरपूर है। उसे पर्याय में आनन्द की भक्ति से स्नान करा। आहाहा! पूरा तत्त्व भगवान पूर्ण है, उसके सन्मुख होकर आनन्दरूपी भक्ति से उसे स्नान करा। आहाहा! पानी से स्नान नहीं, तेल से नहीं, दूसरी बाहर की किसी भी ऊँची चीज़ से नहीं, अशुभराग से नहीं, शुभराग से नहीं। आहाहा!

आनन्द-भक्ति... गजब शब्द प्रयोग किया है न! **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** अतीन्द्रिय आनन्द के झरने उसमें से बहते हैं। तू ज्ञायकस्वरूप भगवान है न, प्रभु! तुझमें अनन्त गुण की प्रभुता भरी है न, नाथ! पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द भरा है न! तो पर्याय में आनन्द की भक्ति से उसे स्नान करा। यहाँ पर्याय की बात है। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। बापू! भगवान! आत्मा अर्थात् क्या? भाई! आहाहा! आत्मा अर्थात् परमात्मा के पूर्ण शक्ति के स्वभाव का सागर भगवान। उसे आनन्द की भक्ति से स्नान करा। राग की भक्ति रहने दे। आहाहा!

देखो! यह पंचम काल के मुनिराज! यह तो अभी अमृतचन्द्राचार्य के पश्चात् हुए हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव, आहाहा! पंचम काल के सन्त हैं। वे श्रोता को ऐसा कहते हैं। उन्हें ऐसा नहीं लगता कि यह श्रोता हीन है और छोटे-साधारण हैं। उन्हें ऐसी बात कैसे करूँ? आहाहा! भगवान! उन्हें पंचम काल लागू नहीं पड़ता। उन्हें हीन, हीन अवस्था भी लागू नहीं पड़ती। आहाहा! ऐसी जो आनन्दशक्ति से भरपूर भगवान परम ज्ञायकस्वभाव पारिणामिक -स्वभाव सहज स्वभाव, अकृत्रिम स्वभाव, अनादि स्वभाव—ऐसे आनन्दभक्ति से उसे स्नान करा। आहाहा! है?

आनन्द-भक्तिपूर्वक... इस कारण यह शब्द प्रयोग किया है कि राग भक्ति नहीं। तथा आत्मा गुणी और गुण है, ऐसे भेद के विकल्प की भक्ति, वह भी भक्ति नहीं है। आहाहा! छोटाभाई! यह बड़े भाई की बात है। आहाहा! अन्दर बड़ा भगवान स्थित है,

प्रभु! आहाहा! अरे! तुझे तेरी महिमा नहीं जँचती, प्रभु! विद्यमान चीज़ नहीं जँचती... आहाहा! और अविद्यमान, नहीं टिकती चीज़ पर तुझे विश्वास? संयोग और रागादि जो नहीं टिकती चीज़ है, प्रभु! उसका तुझे विश्वास? और तेरा जो गुण और अनन्त गुण का धाम ध्रुव, गाढ़ स्वभाव से भरपूर ऐसा नित्य.. आहाहा! उसका तुझे भरोसा नहीं, उसका तुझे विश्वास नहीं, उस ओर का पोषण नहीं, पोषाण नहीं और पोषण नहीं। पोसाता नहीं, इसलिए उसका पोषण नहीं। आहाहा! अमृत का झरना बहाया है। पंचम काल में अमृत बहाया है।

सब भगवान है न, प्रभु! आठ वर्ष के बालक को भी यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहा! शरीर की करोड़ पूर्व के आयुष्यवाला जीव हो, वह तो देह की स्थिति है। आठ वर्ष का बालक, वह तो देह की स्थिति है। राग होता है वह भी क्षणिक स्थिति है। तेरी स्थिति तो अन्दर ध्रुव नित्यानन्द भगवान अन्दर स्थित है न पूरा! आहाहा! ऐसे प्रभु को आनन्द-भक्तिपूर्वक स्नान करा।

आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा... देखा? वापस। निज अर्थात् अपना वीतरागभाव, अपना जो वीतरागभाव जल है, उसके द्वारा स्नान कराओ। गजब भाषा है। आहाहा! एक कलश में तो गजब किया है न! भगवान! तुझे न सुहावे, ऐसी यह बात नहीं है। प्रभु! तू पूर्ण है और तुझे कैसे नहीं रुचे? आहाहा! पूर्ण भरपूर है न, प्रभु! आहाहा! आचार्य, तुझे भगवानरूप से सम्बोधन करते हैं। आहाहा! तू पामरता में खप जाए, यह तुझे शोभा नहीं देता, प्रभु! आहाहा!

ऐसे **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** यह भाषा क्यों ली है? कि भक्ति तो है। देव, गुरु, शास्त्र आदि की भक्ति है, होती है, परन्तु वह कहीं आत्मा के मलिन जल का नाश हो... वीतराग जल द्वारा मैल का नाश होता है। उस राग द्वारा मलिनता का नाश नहीं होता। आहाहा! यह अतीन्द्रिय दरबार है, उसमें जा। अतीन्द्रिय दरबार अन्दर भरा है। आहाहा!

ऐसे में **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! **निज शममय जल द्वारा...** अपना जो वीतरागभाव है, उस जल द्वारा। आहाहा! गजब काम किया है न? यह पंचम काल के सन्त, ये पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। तू छोटा है, आलसी है, यह कर तो होगा-ऐसा (नहीं कहते)। भगवान! तू बड़ा प्रभु है न? बापू! तुझे उसका विश्वास क्यों नहीं बैठता?

आहाहा! शरीर प्रमाण और राग के वेश के भेष में तू घुस गया। परन्तु प्रभु! राग का वेश ही तेरा नहीं है। शरीर तो तेरा है ही नहीं। आहाहा! परन्तु दया, दान की भक्ति का राग, वह भी तेरा भेष नहीं है। आहाहा! ओहोहो!

समयसार में तो ऐसा कहा, मोक्ष भी एक भेष है। आहाहा! पर्याय है। आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह वेश / दशा है। वह पूरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! उसमें कहा है न? मोक्ष का वेश प्रवेश होता है। उसे जानकर निकल जाता है। संवर, निर्जरा प्रवेश करते हैं। आहाहा! मोक्षरूपी पर्याय को वेश भी तेरा पूरा मूल स्वरूप नहीं है। वह भी एक वेश / अवस्था है। आहाहा! ऐसा जो अवस्थायी प्रभु, जिसे केवलज्ञान आदि मोक्ष भी एक अवस्था का वेश है, एक समय की पर्याय का वेश है, स्वांग है। आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप तो उस वेश से पार है। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पर्याय तो नाशवान है। मोक्ष की पर्याय भी एक समय रहती है और दूसरे समय में उसका नाश होता है। यह तो भगवान ध्रुव अन्दर भरपूर, वीतरागस्वभाव और आनन्द से भरपूर है। उसे... आहाहा! **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** वीतराग शममय जल। निज शममय जल। अपना जो वीतराग स्वभावभाव पर्याय, उस **द्वारा स्नान कराओ;...** प्रभु! आप क्या कहते हो? आहाहा! किसे सुनाते हो यह? समाज साधारण है, पंचम काल है।

मुमुक्षु : यह लागू नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लागू नहीं पड़ता, प्रभु! आहाहा! यह बालक है और यह अनजान आये हैं, कभी सुना नहीं। प्रभु! ऐसा रहने दे। तू भगवान है, यह सुन। आहाहा!

इस श्लोक में बहुत-बहुत भरा है। **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** राग है, वह तो दुःख है। इसलिए **आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल...** अर्थात् वीतरागभाव। आहाहा! **आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा...** अपनी वीतरागी पर्याय द्वारा **स्नान कराओ;...** आहाहा!

अब जरा कहते हैं, **बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन...** लौकिक व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प आदि तो लौकिक हैं। आहाहा! बाहर की देह की क्रिया और वाणी, वह तो जड़ है, उसके साथ कुछ नहीं परन्तु तुझमें जो कुछ लौकिक व्यवहार, दया, दान की क्रिया, व्यवहाररत्नत्रय के (विकल्प उठें), वह लौकिक जाल है, भाई! वह लोकोत्तर स्वरूप नहीं है। आहाहा!

बहुत लौकिक आलापजालों से... व्यवहार के कथन बहुत आवें, उनमें प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। देखो व्यवहार... देखो व्यवहार... व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है, व्यवहार कारण है, निश्चय कार्य है। प्रभु! सुन, भाई! आहाहा! ऐसे **बहुत लौकिक...** बहुत प्रकार के वीतराग के शास्त्र में भी व्यवहार की बातें आती हैं, उस व्यवहार और **बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन...** आहाहा! अब (आजकल) यह कहते हैं कि महाव्रत धारण करे उसे अनुभूति होती है। आहाहा! प्रभु! प्रभु! क्या करता है? भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। इसमें लिखा है। इसमें कहीं है। कहीं है, हों! पढ़ा अवश्य था, चिह्न किया है। कहीं है। *'रत्नत्रय अर्थात् महाव्रत के स्वीकार बिना यदि आत्मध्यान की इच्छा करता है, वह मूर्ख माना जाता है।'* अरर्र! महाव्रत बिना आत्मा का ध्यान करने जाए, अरे! प्रभु! तू क्या कहता है? प्रभु! आहाहा!

अष्टपाहुड़ में तो यहाँ तक कहा है कि प्रभु! समकित का ध्यान कर। भाई! आता है न? श्लोक आता है। आहाहा! अब ऐसे लेख आवे साधु नाम धराकर...। प्रभु! प्रभु! क्या करे? भाई! कहते हुए शर्म आती है। तुझे ऐसा कहना और यह बात बाहर प्रसिद्ध करना, वह भी शर्म आवे ऐसी बात है। आहाहा! *'रत्नत्रय, महाव्रत के स्वीकार बिना जो आत्मध्यान की इच्छा करता है, वह मूर्ख माना जाता है।'* आहाहा! वीतराग स्वसंवेदन, वीतराग सम्यग्दर्शन, वीतराग चारित्र, शुद्ध उपयोग, स्वरूपाचरणचारित्र। शुद्ध उपयोग है, वह चारित्र है। निश्चय-विश्चय नहीं। आहाहा! ऐसा बहुत लिखा है। ऐसी पुस्तकें प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु.. प्रभु! जवान है, छोटी उम्र है। शरीर में जवान... बाह्य क्रिया में मस्त है, इसलिए ऐसी मस्ती हो गयी है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! **बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन...** सम्यग्दृष्टि भी स्वरूप का ध्यान करता है। भले व्रत नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी होने के काल में शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन होता है, पश्चात् भी कितने ही काल में किसी को आठ दिन, महीने, दो महीने में शुद्धोपयोग में आता है, ज्ञाता-ज्ञान को भूल जाए, ऐसी दशा चौथे गुणस्थान में भी होती है। अरे! प्रभु! यह महाव्रत धारण करे, उसे इस प्रकार से (होता है), महाव्रत राग है, उसे धारण करे, उसे ऐसा होता है। (ऐसा वे कहते हैं)। आहाहा! अरेरे! क्या कहा?

बहुत लौकिक... लौकिक शब्द से व्यवहार। नियमसार में आता है नहीं? बहुत कथन व्यवहार का किया है। एक श्लोक नहीं? नियमसार में एक श्लोक आता है, व्यवहार के बहुत कथन से क्या है? वह कुछ (नहीं है)। लौकिक आता है। आहाहा! यह नियमसार है न? कहीं आता है। कहाँ? इस ओर है। बहुत कथन से क्या? १३२ पृष्ठ पर है। १३२ पृष्ठ, १२१ वाँ कलश। १२१ वाँ कलश है। सहज ही हाथ आया। अपने ११३ वाँ कलश चलता है न? तो १२१ कलश, पृष्ठ १७२। है? **जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (कहनेमात्र) कारण है, उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (अनेक भवों में) सुना है...** देखा? है? भाई! सुजानमलजी! हाथ आया या नहीं? क्या हुआ? १७२ पृष्ठ, १२१वाँ कलश।

जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (कहनेमात्र) कारण है,... आहाहा! **उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (अनेक भवों में) सुना है और आचरा (आचरण में लिया) है परन्तु अरेरे! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को) जीव ने सुना-आचरा नहीं है, नहीं है।** है? आहाहा! अकेला अमृत रखा है। आहाहा! यह तो लौकिक कहा न? यह यहाँ लौकिक है। ऐसा व्यवहार अनन्त बार सुना। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत ऐसे व्यवहाररत्नत्रय तो अनन्त बार सुने और अनन्त बार आचरण किये। आहाहा! उससे क्या? लोगों को बहुत कठिन लगता है। शुरुआत ही यहाँ से होती है।

पूर्णानन्द का नाथ, आनन्द और ज्ञान और वीतरागस्वभाव से परिपूर्ण भरपूर तत्त्व, अनादि-अनन्त है, उसे आनन्द की भक्तिपूर्वक उसका स्नान कर। आहाहा! लौकिक जाल रहने दे। यह व्यवहाररत्नत्रय लौकिक जाल है। भव-भव में किया। आ गया न? भव-भव में.. आहाहा! यह किसमें से निकाला। **बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन...** वह सब लौकिक है, लोकोत्तर नहीं। व्यवहाररत्नत्रय है, वह लौकिक है। आहाहा! क्योंकि भव-भव में अनन्त बार किया है। आया न? भव-भव में अनन्त बार। आहाहा!

मुमुक्षु : जगपंथ कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जगपंथ है। लौकिक कहो या जगपंथ कहो, व्यवहार कहो,

व्यवहार जाल कहो, वह दुःख का भाव कहो, राग का जाल कहो। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें। नये सुननेवाले को तो ऐसा लगे कि ऐसा कहाँ से (निकाला)? यह तो सब ऐसा। भगवान! यह तो अनादि की बात ऐसी ही है, प्रभु!

तीन लोक के नाथ, भगवान विराजते हैं, वहाँ यह बात हो रही है। यह बात वहाँ से आयी है। तब वे इनकार करते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये, यह बात सत्य नहीं है। अर र र! अब शास्त्र पाठ है। समयसार के, पंचास्तिकाय के जयसेनाचार्य की टीका का पाठ। दर्शनसार में पाठ, अष्टपाहुड़ में पाठ है। दर्शनसार के पाठ में तो यहाँ तक कहा, अरे रे! परमात्मा! कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में जाकर यदि यह बात न लाये होते तो हम मुनिपना कैसे पाते? आहाहा! अब उसे ये इनकार करते हैं। क्या हो? प्रभु! कौन रोके ऐसा है। जीभ चले उसमें... आहाहा! इस जीभ का जीह्वाग्र चले, उसे कौन रोके? आहाहा!

यहाँ तो आचार्य, मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, वे कहते हैं कि **बहुत लौकिक...** व्यवहार की बातें शास्त्र में भी आती है। समयसार की ११वीं गाथा में आता है न? भाई! हस्तावलम्ब जानकर (ऐसा) बहुत आता है, परन्तु उसका फल तो संसार है। समयसार की ११वीं गाथा। भगवान का कहा हुआ व्यवहार पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति यह और वह, यह भी व्यवहार है, राग है, उसका फल संसार है। यह महाव्रत आदि सब संसार है। तब वे कहते हैं कि महाव्रत बिना आत्मध्यान नहीं होता। अर र! प्रभु! प्रभु! तू क्या करता है? आज सवेरे खीमचन्दभाई ने दो पुस्तकें दीं। जरा थोड़ा पढ़ा। बारीक अक्षर है न? आँख में जरा कचास है। बहुत बारीक अक्षर दिखते नहीं। आँखें जलती है। आँख में कुछ फेर है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **बहुत...** बहुत... बहुत... बहुत... कहना, लौकिक जाल, ऐसे **आलापजालों से क्या प्रयोजन (अर्थात्) अन्य अनेक लौकिक कथनसमूहों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है?** उससे तेरा क्या कार्य सधे, ऐसा है? यह व्यवहार के क्रियाकाण्ड के लौकिक से तेरा क्या कार्य सधे, ऐसा है? ऐसा कहते हैं। एक श्लोक (पूरा) हुआ।

श्लोक-११४

(स्रग्धरा)

मुक्त्वानाचार-मुच्चैर्जनन-मृतकरं सर्व-दोष-प्रसङ्गं,
स्थित्वात्मन्यात्मनात्मा निरुपमसहजानन्ददृग्ज्ञप्तिशक्तौ।
बाह्याचार-प्रमुक्तः शम-जलनिधिवार्बिन्दु-सन्दोहपूतः,
सोऽयं पुण्यः पुराणः क्षपितमलकलिर्भाति लोकोद्घसाक्षी ।।११४।।

(हरिगीतिका)

जन्म-मरण की सब दोष प्रसंगों से जो अन्-आचार।
उसे छोड़कर सहज अनुपम दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुखकार॥
आतम में आतम से स्थित होकर बाह्याचार विमुक्त।
शमरूपी सागर जलकण से होता है जो परम पवित्र॥
ऐसा परम पवित्र सनातन मैल क्लेश क्षय करता है।
क्षण भर में वह तीन लोक का उत्तम साक्षी होता है॥११४॥

[श्लोकार्थः] जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के [१]प्रसंगवाले अनाचार को अत्यन्त छोड़कर, निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा में आत्मा से स्थित होकर, बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ, शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के समूह से पवित्र होता है, ऐसा वह पवित्र पुराण (-सनातन) आत्मा मलरूपी क्लेश का क्षय करके लोक का उत्कृष्ट साक्षी होता है॥११४॥

श्लोक-११४ पर प्रवचन

११४ (कलश)।

मुक्त्वानाचार-मुच्चैर्जनन-मृतकरं सर्व-दोष-प्रसङ्गं,
स्थित्वात्मन्यात्मनात्मा निरुपमसहजानन्ददृग्ज्ञप्तिशक्तौ।

१- प्रसंग=संग; सहवास; सम्बन्ध; युक्तता।

बाह्याचार-प्रमुक्तः शम-जलनिधिवार्बिन्दु-सन्दोहपूतः,
सोऽयं पुण्यः पुराणः क्षपितमलकलिर्भाति लोकोद्घसाक्षी ।।११४।।

आहाहा! [**श्लोकार्थः —**] **जो आत्मा...** भाई! यह कुछ कथा-वार्ता नहीं, नाथ! तीन लोक के नाथ वीतराग की सभा में इन्द्र बैठे हों, चार ज्ञान के धनी गणधर बैठे हों, वे बातें बापू! कैसी होंगी? आहाहा! सभा में-इस तिर्यंच सभा में हजारों सिंह और हजारों बाघ और हजारों नाग बैठे होते हैं। आहाहा! मनुष्य सभा में इन्द्र, गणधर... आहाहा! उनकी सभा में भगवान की वाणी ॐध्वनि खिरे। 'ॐध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारै।' आहाहा! वह भगवान का मार्ग-वाणी कैसी होगी? भाई! समझ में आया?

अनन्त-अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी समझा नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, ऐसी क्षमा भी परलक्ष्यी की, परन्तु एक क्षण भी आत्मा आनन्द का नाथ सागर है, उसकी नजर इसने नहीं की। उसका इसे विश्वास नहीं आया। मैं ऐसा? आहाहा! एक बीड़ी बिना चले नहीं। एक बार में रोटी (मिले), जहाँ दो बार का एक बार हो जाए तो ठीक न पड़े। वहाँ इसे ऐसा आत्मा, अनाहारी आत्मा... आहाहा! आहार बिना टिकता आत्मा, राग बिना टिकता आत्मा, लौकिक व्यवहाररत्नत्रय से रहित टिकता आत्मा (यह कैसे जँचे?) आहाहा!

जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के प्रसंगवाले... दोष का संग। शुभ और अशुभराग का संग, उसका प्रसंग.. आहाहा! उसका सम्बन्ध, उसका सहवास, उसका जुड़ान। भगवान अमृत का सागर, उसे रागरूपी दुःख के साथ जुड़ान। आहाहा! अमृत का सागर पूर्ण स्वरूप भरपूर, निर्भर-भर से भी निर्भर। गाड़ी के भार को भर कहते हैं न? पूरी गाड़ी भरे, उसे भर कहते हैं। यह तो निर्भर। इससे भी नि-उपसर्ग करके (निर्भर कहा है)। आहाहा! भरचक भगवान अन्दर आनन्द और शान्ति से भरपूर पूर्ण है। ऐसे **आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के प्रसंगवाले अनाचार को अत्यन्त छोड़कर,...** आहाहा! ये सब अनाचार हैं। शुभरागादि क्रिया भी अनाचार है। आहाहा!

जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के प्रसंगवाले... सहवासवाला, ऐसा जो अनाचार है (उसे) **अत्यन्त छोड़कर,...** आहाहा! उस राग के परिणाम को

अत्यन्त छोड़कर। आहाहा! वीतरागस्वभावी भगवान को अत्यन्त प्रेम और भक्ति से अन्दर देख। आनन्द और शान्ति की भक्ति से उसे देख। आहाहा! ऐसे **जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों...** इसमें सर्व दोष लिए हैं न? राग का कणमात्र भी, गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी दोष है। आहाहा! वह भगवान आत्मा के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! कहो, यशपालजी! यह लोग एकान्त कहते हैं न फिर सोनगढ़ का! नहीं कहते? एकान्त है निश्चयाभास है, मिथ्यात्व है। प्रभु! तुझे कहने का हक है, बापू! आहाहा! तेरी दशा में तू कह। तुझे-प्रभु को शोभा नहीं देता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **सर्व दोषों के प्रसंगवाले...** सहवास। उनका सहवास, उनका संग ही छोड़। उस शुभराग का संग छोड़। आहाहा! शुभराग का सहवास, सम्बन्ध छोड़।

मुमुक्षु : वर्षा (बादल) गरजी...

पूज्य गुरुदेवश्री : गरजी न? गरजी। आहाहा!

जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले,... अर्थात् भव के करनेवाले। **सर्व दोषों के...** शुभ और अशुभभाव, वह संसार है, वह दोष है। आहाहा! उसके प्रसंग को-सहवास को छोड़कर। आहाहा! उसका संग, सम्बन्ध और सहवास छोड़कर, उसका जुड़ान छोड़कर। आहाहा! त्रिलोक के नाथ आनन्द के सागर में जुड़ान करके राग का जुड़ान छोड़ दे। आहाहा! **प्रसंगवाले अनाचार को अत्यन्त छोड़कर,...** वापस अकेला छोड़कर, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर है न! आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत के सागर के स्वाद से भरपूर प्रभु पूर्ण है न! आहाहा! उसका आश्रय लेकर इस राग का संग छोड़ दे। असंग चीज़ का संग कर और संग जो राग है, उसे छोड़ दे। आहाहा!

निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा में... अब छोड़कर भी जाना कहाँ? कि **निरुपम...** जिसकी कोई उपमा नहीं। आहाहा! ऐसा **सहज आनन्द...** भगवान सहजात्म आनन्द, जिसे कोई उपमा नहीं। उपमा क्या होगी? इन्द्र के सुखों से आत्मा का सुख अनन्तगुना, ऐसा है? इन्द्र का सुख तो जहर है। आहाहा! उसे आत्मा के सुख के साथ मिलान करे कि अनन्तगुना सुख है, यह बात है ही नहीं। आहाहा! संसारी जो सुख कल्पना है, वह तो जहर है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं **निरुपम...** जिसे कोई उपमा नहीं। उसकी उपमा उसे। ऐसा

स्वाभाविक आनन्द, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक वीर्यवाला आत्मा है। ऐसा आत्मा है, कहते हैं। आहाहा! वह रागवाला, विकारवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! **निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा में आत्मा से...** आत्मा में आत्मा से। आत्मा में राग से नहीं परन्तु आत्मा से, उसके स्वभाव से। आहाहा! **आत्मा में आत्मा से...** लो, 'से' लिया। व्यवहार से, निमित्त से-ऐसा नहीं लिया। आहाहा! ऐसे **आत्मा से स्थित होकर,...** आत्मा में आत्मा से अर्थात् वीतराग पर्याय से। आहाहा! वीतरागमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसे अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागी पर्याय से... आहाहा! **स्थित होकर,...** उसमें स्थित होकर। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव में स्थित होकर। आहाहा! उसे (अनाचार को) छोड़कर और इसमें (आत्मा में) स्थिर होकर। अनाचार, रागादि को छोड़कर-अत्यन्त छोड़कर और सहज आत्मा में स्थित होकर।

बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ,... आहाहा! बाह्य आचार जितना विकल्प का है, उससे **मुक्त होता हुआ,...** ओहोहो! **शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के समूह से पवित्र होता है,...** पर्याय लेनी है न? समतारूपी समुद्र के वीतरागरूपी पर्याय में **शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं...** निर्मल वीतरागी पर्याय के **समूह से...** आत्मा **पवित्र होता है,...** आहाहा! अपने स्वभाव से ही आत्मा पवित्र होता है। अलिंगग्रहण में आता है न? छठा बोल। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। राग से, निमित्त से, व्यवहार से ज्ञात हो, ऐसा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ,... आहाहा! यह उसमें कहा है न? समयसार में (कहा है), द्रव्यलिंग को छोड़कर। पश्चात् अर्थ किया कि द्रव्यलिंग को छोड़कर अर्थात् व्रत को छोड़कर, अव्रत में जाना-ऐसा नहीं है। उन व्रतादि को छोड़कर अन्दर में जाना, ऐसा कहना है। तू मानो व्रत छोड़कर अव्रत में जाना, ऐसा नहीं है। आहाहा!

शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के समूह से पवित्र होता है,... उससे प्रभु पर्याय में पवित्र होता है। पर्याय में समतारूपी जल से आत्मा पवित्र होता है। वह राग के भाव से आत्मा पवित्र नहीं होता। आहाहा! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, परन्तु उस भाव से आत्मा पवित्र नहीं होता। आहाहा! क्योंकि वह राग है।

यहाँ कहते हैं कि **शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं...** यह भगवान तो समता का पूरा

समुद्र है। समता का सागर-समुद्र है। परन्तु उसमें से पर्याय में **जलबिन्दुओं के समूह से...** शुद्धपरिणति को प्रगट करके। आहाहा! रागादि को छोड़कर, उससे **पवित्र होता है,...** बाह्य कोई व्यवहार क्रियाकाण्ड से आत्मा, व्यवहाररत्नत्रय से आत्मा पवित्र नहीं होता। आहाहा! अब यह सबको कहे, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। जयसेनाचार्य की टीका में आता है, वह सर्वत्र डालते हैं। यह (वहाँ) तो ज्ञान कराते हैं। जिसने पर से भिन्न किया और साधन निश्चय हुआ, तब इस व्यवहार को व्यवहार का आरोप देकर व्यवहार साधन कहा है। निमित्त का ज्ञान कराया है परन्तु बहुत कठिन बात है, भाई। आहाहा! **शमरूपी समुद्र के...** यह स्वयं भगवान, इसके **जलबिन्दुओं के समूह से...** इसकी पर्याय में वीतरागभाव से। भव का नाश करके केवलज्ञान और केवलदर्शन, **उत्कृष्ट साक्षी होता है।** केवली होता है। विशेष कहेंगे।

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)